THE TIMES OF INDIA

Date: 23-02-18

Five reforms PM can consider

Government must focus on its core functions, maximum government yields minimum governance

Sanjeev Sabhlok

India's leading industrialists in a Switzerland conference a few months ago were positive that India was now on the cusp of sustained 10% GDP growth. I demurred, pointing out the barrier of India's chronic governance failures.As expected, GDP growth remains in the doldrums. Millions of jobless youth and hundreds of millions of farmers continue to be left behind. The poor have no idea why nothing ever changes despite so many promises.Our party is working intensively at the grassroots in interior UP. We are picking up strong signals of disenchantment. The people have waited patiently for three years for the vikas which never came. The youths want kaam, not Ram. Heartland cow belt Hindu farmers have told us – on camera – that BJP's focus on beef is harming their economic prospects.Does anyone remember the slogan Prime Minister Narendra Modi once had: "Minimum government, maximum governance"? We haven't seen any of it. The PM is doing exactly what UPA did. He is making use of the same non-performing governance machine that UPA used and has copied all of UPA's policies. One can't do the same thing and expect different results.We need fundamental reforms of the governance system. This requires taking some really big and important steps. Even if Modi starts work on these reforms today, much can be achieved by May 2019. All these reforms should move in parallel.

First, our electoral system. Criminals continue to enter our elected bodies even as the honest and competent are often unable to afford to contest, because losing an election would cost them the hard-earned money they spend on their campaign. In order to motivate the truly talented to enter Parliament, India needs state funding on a per vote basis. Electoral bonds cleverly obfuscate systemic underlying crony capitalism and corruption. Political parties that don't make deals with corrupt businesses don't (and can't) get such funding.Second, our bureaucracy. Governing well requires a high quality machine, a top notch bureaucracy. But our bureaucracy is exceptionally incompetent by world standards and entirely unaccountable. Only replacement of IAS and other tenured services with a contractual, well-paid bureaucracy that is accountable and able to be fired instantly for non-delivery can give us a government machine that works. Our party's manifesto shows how this can be achieved without disrupting existing governance.

Third, the protection of private property. Our original Constitution guaranteed to citizens the right to acquire, hold and dispose of property. Nehru and Indira Gandhi diluted this right, saying that government must 'subordinate the rights of individuals to the urgent needs of society'. The ultra-socialist Janata Party scrapped this right altogether, by repealing Article 19(1)(f) through the 44th Amendment. The Modi government should restore our fundamental right to property. No country can succeed in which citizens'

property is insecure. This reform will also involve repealing the ninth schedule.Fourth, freedom of speech. India ranks close to the bottom on all global indicators of freedom. Indian governments give in repeatedly to pressure from violent street gangs parading under various religious banners to restrict this most fundamental of freedoms. Freedom of belief, which includes the freedom to eat food of one's choice, is likewise thwarted. In contrast, the US defends an almost absolute level of free speech. That's why it will continue to lead in innovation, which requires the freedom to think. Let Modi government enshrine the strongest possible defence of citizen freedoms in the Constitution. Let's bring down the Heaven of Freedom to earth, to India.

Finally, the government continues to dabble in things that are not its business. It runs businesses such as Ashok hotels and Air India instead of performing well its core functions. Let Modi government significantly increase funding for core functions and divest all government businesses.All this needs a change in national ideology. I trust the PM is aware that socialist calculation is impossible and that well-considered regulation can deal with any market failures. Let's build a system of freedom and free markets derived from a strong understanding of incentives. The PM should repeal the word "socialist" that pollutes our Preamble and scrap all socialist interventions and laws. This will become the greatest economic reform India has ever seen.Every Indian deserves the opportunity to rise to a middle class level that is a minimum standard across the world. Achieving this is not hard but does require a limited, accountable government.

Our message of accountable government is finding great resonance at the grassroots. We show people that the government is their servant since it subsists on their taxes, therefore must deliver its core functions of security and justice. We explain how things can change dramatically once justice is delivered in time. We ask them to imagine what would happen if criminals and corrupt (many of them our MPs and MLAs) were quickly caught and jailed, and to imagine what would happen if schoolteachers who rarely attend school were punished.The people are angry at the system that has made paupers out of them and which prevents them at every stage from making progress. Governments across the country continue to abdicate governance and many are fishing for votes by agitating India's divided society. Hundreds of thousands of youth are being forced to apply for a tiny number of government jobs.Does Modi have it within him to bring about real change that will genuinely transform the lives of a billion people?

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 23-02-18

भारतीय बैंकिंग क्षेत्र की समस्या और हल

देवाशिष बसु

जिस समय पीएनबी घोटाला हो रहा था, आरबीआई क्या कर रहा था? बैंक का शीर्ष प्रबंधन उस वक्त क्या कर रहा था? अंकेक्षक उस वक्त क्या कर रहे थे? ऐसे कई सवाल उठा रहे हैं देवाशिष बसु

एक और बैंक घोटाला सामने आया है जिससे समूची जनता में निराशा व्याप्त है। इस बार भी नाम एक सरकारी बैंक- पंजाब नैशनल बैंक का ही आया है। आभूषण कारोबारी नीरव मोदी और उनके मामा मेहुल चोकसी (चर्चित संस्थागत विदेशी निवेशकों में से एक) ने

कथित तौर पर बैंक को 11,000 करोड़ रुपये का चूना लगाया और अमेरिका भाग गए। पूरा देश इनके दुस्साहस और बैंकों की मूर्खता पर हैरान है। इसके ठीक पहले भारतीय स्टेट बैंक ने भी अपना मुनाफा 36 फीसदी बढ़ाकर दिखाने और 23,239 करोड़ रुपये अथवा 21 फीसदी के फंसे हुए कर्ज की बात स्वीकार की थी। ऐसे घोटालों और व्यवस्था की इस नाकामी पर एक सहज नाराजगी भरी प्रतिक्रिया यह होती है कि इसके लिए कौन उत्तरदायी है।

भारतीय रिजर्व बैंक क्या कर रहा था? बैंक का शीर्ष प्रबंधन क्या कर रहा था? बैंक की आंतरिक सुरक्षा कैसी थी और अंकेक्षक क्या कर रहे थे? आरबीआई के पूर्व डिप्टी गवर्नर और पीएनबी के पूर्व चेयरमैन के सी चक्रवर्ती कहते हैं कि बैंक के तंत्र में खामियां थीं जिन्हें ठीक करना चाहिए। ये तमाम उपाय जवाबदेही और जिम्मेदारी के इर्दगिर्द ही घूमते हैं। इसके लिए स्वामित्व और बैंकों का नियंत्रण बदलने की आवश्यकता नहीं है। सरकारी बैंक अपने स्वामित्व और नियंत्रण के तौर तरीकों के कारण निरंतर संकट में हैं। उन्हें दुरुस्त करने की बात तब से बार-बार दोहराई जा रही है जब से नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बने हैं। मैं तीन साल में अपने स्तंभ के जरिये कई बार कह चुका हूं कि उन्हें सफलता नहीं मिलेगी। दिसंबर 2014 में मैंने लिखा था, 'मुझे आशंका है कि वह वित्तीय क्षेत्र के सुधार में बहुत प्रगति नहीं कर पाएंगे। सरकारी बैंकों को 2.4 लाख करोड़ रुपये की पूंजी 2018 तक चाहिए ताकि वे बेसल 3 मानकों का पालन कर सकें। फंसे हुए कर्ज वाले 30 शीर्ष खातों में 87,368 करोड़ रुपये की राशि है। यानी सरकारी बैंकों के कुल एनपीए का 35.9 फीसदी।इन आंकड़ों के अलावा सरकारी स्वामित्व के कारण भ्रष्टाचार, राजनैतिक हस्तक्षेप, विकृत पूंजीवाद, नियामकीय विफलता और बार-बार पूंजीकरण देखने को मिल रहा है। अगर ये सवाल नहीं पूछे जाएंगे यथास्थिति बनी रहेगी और भारतीय अर्थव्यवस्था और सरकारी बैंकिंग तंत्र का लडख़ड़ाना जारी रहेगा।' एकदम यही हुआ। नाकाम ज्ञान संगमों के अलावा मोदी सरकार ने इंद्रधनुष योजना की शुरुआत की और बैंक्स बोर्ड ब्यूरो की बात की। इसका काम था बैंकों में शीर्ष नियुक्तियां करना और फंसे हुए कर्ज की समीक्षा करना।

अगस्त 2015 में मैंने इस बेकार की छेड़छाड़ के बारे में काफी कुछ लिखा था। दुख की बात है कि यह भी सही साबित हुआ। सरकार आखिर कहां चूक कर रही है? इसका जवाब दो अलग-अलग रुखों में निहित है जिनके बीच करीब 700 साल का अंतर है। इनमें से एक है वर्ष 2014 की बेस्ट सेलर जस्ट वन थिंग, जिसे लिखा है गैरी केलर और जे पापासन ने तो दूसरा है एक मध्यकालीन दार्शनिक विचार जिसे ओकम रेजर कहा जाता है। पुस्तक में कहा गया है कि आप अपने समय, पैसे और प्रयासों के नतीजों में नाटकीय सुधार ला सकते हैं बशर्ते कि हर मुद्दे पर और समय आप एक साधारण सा सवाल सामने रखें: मैं ऐसा क्या कर सकता हूं कि जिसे करने से हर कुछ आसान या अनावश्यक हो जाए? यह सवाल आपको न केवल बड़े सवालों के जवाब तलाश करने का अवसर देगा (मैं कहां जा रहा हूं? मुझे किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए काम करना चाहिए?)। साथ ही इसका संबंध छोटे लक्ष्यों से भी है, मसलन मुझे अभी क्या करना चाहिए ताकि मैं बड़े लक्ष्य की ओर बढ़ सकूं? अगर नीति निर्माता इसे सरकारी बैंकों पर लागू करके देखें तो वे खुद से पूछेंगे कि हमें सरकारी बैंकों के साथ ऐसा क्या करना चाहिए ताकि सबकुछ आसान हो जाए (फंसा कर्ज कम हो, घोटाले रुकें और क्षमता सुधरे) या अनावश्यक?

हम इसके जवाब पर आएंगे लेकिन पहले यह देखते हैं कि ओकम रेजर हमारी क्या मदद कर सकती है। जैसा कि आप में से कुछ लोग जानते ही होंगे ओकम रेजर समस्या हल करने का एक तरीका है जिसे विलियम ऑफ ओकम नामक अंग्रेज दार्शनिक ने विकसित किया था। यह सुझाता है कि जब कई हलों में से एक को तलाश करने में मुश्किल आए तो तो ऐसा हल चुनना चाहिए जिसमें सबसे कम अनुमान शामिल हों। अब सरकारी बैंकों पर इसे लागू करके देखते हैं। कोई भी दो रुख अपना सकता है। पहला, स्वामित्व और नियंत्रण को समान रखते हुए व्यवस्था और शीर्ष नेतृत्व में बदलाव लाकर बेहतर और सक्षम संस्थान का निर्माण करना। इसमें कई तरह के अनुमान शमिल हैं।

दूसरा है स्वामित्व में बदलाव और पूरी जिम्मेदारी नए मालिकों पर डालते हुए समस्या को हल करना और जो भी परिणाम हो उसके लिए तैयार होना। इसमें किसी अनुमान की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह हलों का कोई समुच्चय नहीं बल्कि समस्या से पूर्ण निजात का तरीका है। दूसरे शब्दों में कहें तो सरकार को इस समस्या को हल करने के लिए स्वामित्व बदलने पर विचार करना चाहिए। तथ्य यही है कि पीएनबी जैसे तमाम भ्रष्टाचार फंसे हुए कर्ज एवं अन्य समस्याएं केवल इसलिए पैदा होती हैं क्योंकि बैंकों का स्वामित्व सरकार के पास है। निजी बैंकों पर नजर डालें तो वे किफायती हैं और उनमें भ्रष्टाचार भी कम है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वहां जवाबदेही सुनिश्चित है।परंतु मुद्दा वह है ही नहीं। बात दरअसल यह है कि अगर निजी क्षेत्र के बैंकों में कोई घोटाला होता है तो केवल उसके अंशधारक ही इससे प्रभावित होंगे और कुछ हद तक जमाकर्ता। जबकि सरकारी बैंकों का असर बहुत बड़े पैमाने पर होता है। हल यही है कि सरकारी बैंकों में जनता का धन बार-बार लगाने के बजाय उनका स्वामित्व बदला जाए।

दैनिक भास्कर

Date: 23-02-18

यदि मुख्य सचिव ही सुरक्षित नहीं तो फिर कौन है?

अमन सिंह प्रिंसिपल सेक्रेटरी, मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़

'राजनीति में कुछ भी संयोगवश नहीं होता, यदि यह होता है तो आप शर्त लगा सकते हैं कि इसकी योजना ही उस तरह बनाई गई थी।' एक कोट में यह कहा गया है, जो व्यापक रूप से रूजवेल्ट का बताया जाता है। दिल्ली में 20 फरवरी की रात जो पटकथा सामने आई वह सुनियोजित प्रतीत होती है। लगता है मुख्य सचिव अंशु प्रकाश को जाल बिछाकर मुख्यमंत्री निवास पर बुलाया गया, ऐसी जगह जहां जाने से वे इनकार नहीं कर सकते थे। अपने ही विधायकों के दबाव में मुख्यमंत्री ने उनका सीधे सामना करने के लिए मुख्य सचिव को बुला लिया। लेकिन, इसके बाद पटकथा गड़बड़ होकर मुख्य पात्र के काबू से बाहर चली गई। यह कोई गोपनीय रहस्य नहीं है कि मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल मीडिया और अपने सार्वजनिक भाषणों के माध्यम से भ्रष्टों को जाल में फंसाने की वकालत करते रहे हैं- अपने मोबाइल से वीडियो शूट करो और भ्रष्टों को कठघरे में खड़ा कर दो। भ्रष्टाचार रोकने में इसकी उपयोगिता जो भी रही हो, यह संदेश लुप्त नहीं हुआ है। इस अजीब से प्रकरण से देशभर में संदेश गया है कि जब अन्य निर्वाचित विधायकों के साथ खुद मुख्यमंत्री ऐसे हथकंडों पर उतर सकता है, फिर तो यह खुला खेल ही हो गया है।

संपूर्णता में देखें तो यह दुखद घटना इतने बरसों में हुए घटनाक्रमों का चरमोत्कर्ष है। बिहार में नौकरशाहों के खिलाफ हिंसा और दुर्व्यवहार का लंबा इतिहास है लेकिन, हम अपवाद मानकर इसकी अनदेखी कर देते हैं। 1993 में गोपालगंज के डीएम की राजनीतिक भीड़ ने क्रूरतापूर्ण हत्या की थी और पिछले ही साल सारण के डीएम की एक राजनीतिक दल के लोगों ने रॉड से पिटाई की थी। अभी हाल में मध्यप्रदेश के मंदसौर में भीड़ ने जिला कलेक्टर और एसपी की पिटाई कर दी थी। वहां राज्य अपने अफसरों को संरक्षण नहीं दे सका बल्कि उनका तबादला करना बेहतर समझा गया। और पीछे जाएं तो ओडिशा के एक पूर्व मुख्यमंत्री ने पूरे राज्य को सलाह दी थी कि जो बाबू न माने उसे चांटा मार दिया जाए, जिसका अंततः यह नतीजा हुआ कि एक बेरोजगार युवक ने उनकी सलाह पर चलते हुए उन्हें ही थप्पड़ मार दिया। मैं यहां यह रेखांकित करना चाहता हूं कि राज्य की इमारत ब्यूरोक्रेसी और निर्वाचित नेतृत्व की नींव पर

निर्भर है। एक के द्वारा दूसरे को जान-बूझकर कमजोर करने से पूरी इमारत का अस्थिर होना तय है और अब यह देश की राजनीति में निकृष्टतम स्तर पर पहुंच गया है।

यहां हम नौकरशाही की प्रतिक्रिया पर आते हैं। चूंकि मामले की तपिश शीर्ष तक पहुंची तो ढेर सारी अधीनस्थ सेवाओं के संघों सहित आईएएस एसोसिएशन एकजुट हो गया। इसी प्रकार की परिस्थितियों में क्या वे किसी तहसीलदार का बचाव करते? कई दशकों से पटवारी, तहसीलदार, एसडीएम, डॉक्टर और टीचर को थप्पड़ मारे गए हैं, हमले हुए हैं और उन्हें अपमानित किया गया है पर नौकरशाही के शीर्ष स्तर पर उनके हश्र की पूरी तरह अनदेखी की गई। यदि तब अधीनस्थ अधिकारियों के लिए विरोध की गदा उठाई गई होती तो मामला इस हद तक नहीं पहुंचता। व्यक्तिगत स्तर पर मैं कभी यूनियनवाद के पक्ष में नहीं रहा, क्योंकि यदि ब्यूरोक्रेसी को ही यूनियनवाद पर उतरना पड़े तो फिर यह तो उस सब के विपरीत ही होगा, जिसका यह प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन, इसका उलटा भी उतना ही सच है। आवेश में हिंसक हो गए राजनीतिक अधिकारी के सामने एक मामूली 'बाबू' क्या कर सकता है? उसके सामने यूनियन के रूप में एकजुट होने के अलावा विकल्प नहीं है। यदि प्रशासनिक नींव को बचाने का यही तरीका है तो यही सही। अन्य सेवाओं के अधिकारी अब यदि घिरे हुए मुख्य सचिव के साथ नहीं खड़े होते हैं तो वे भी उसी जाल में फंस जाएंगे। यदि किसी राज्य का मुख्य सचिव ही सुरक्षित नहीं है तो फिर कौन है?ब्यूरोक्रेसी के लिए यह आत्मपरीक्षण का वक्त है। इस बात पर यकीन करने वाले कई लोग हैं कि मुख्य सचिव गलत तथ्य गढ़ रहे थे। फर्जी खबरों के इस युग में भी आज ब्यूरोक्रेसी के लिए ज्यादा सम्मान न होने का यह दुखद प्रतीक है और मोटेतौर पर इसके लिए नौकरशाह ही जिम्मेदार हैं। अफसरों के एक अच्छे-खासे वर्ग में भ्रष्टाचार, छल-कपट, कदाचार, अत्यधिक उदासीनता के साथ दंभ व अहंकार ने उस सम्मान, विश्वसनीयता और अधिकार का हनन किया है, जो कभी सिविल सेवा के साथ जुड़ा हुआ था।

खुद कभी ब्यूरोक्रेट रहे मुख्यमंत्री केजरीवाल के लिए तो यह उनकी ज़िंदगी का दुखदतम दिन होना चाहिए, क्योंकि जिस देश में अतिथि की पूजा की जाती है वहां वे अपने अतिथि की अपने घर में अपनी ही पार्टी के लोगों से रक्षा नहीं कर पाए। नैतिकता का बोध रखने वाला कोई भी आत्माभिमानी व्यक्ति न सिर्फ मुख्यमंत्री बल्कि मेजबान के रूप में अपनी जिम्मेदारी न निभा पाने पर पद छोड़ देगा। खेद है कि हमारे देश के सार्वजनिक जीवन में सत्यनिष्ठा के मानक कुछ समय से गिरते ही जा रहे हैं। अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए हम कैसे लोगों को चुन रहे हैं यह जाहिर है। हमारे लोकतंत्र को दीमक खोखला कर रही है और इसके पहले की अधिक नुकसान हो और घर बचाने में बहुत देर हो जाए हमें सक्रिय होना होगा। आइए, इस बार हम नाकाम न रहें।यदि केजरीवाल को मुख्य सचिव से वाकई कोई समस्या है तो कई लोकतांत्रिक व सभ्य तरीके उपलब्ध हैं, फिर चाहे दिल्ली के मुख्यमंत्री के रूप में एक आईएएस अधिकारी को नियंत्रित करने की गुंजाइश कितनी ही कम क्यों न हो। विडंबना यह है कि कार्यपालिका के भीतर से ध्वस्त होने का अनजाने में ही नतीजा सिविल अथॉरिटी के पतन में हुआ है और न्याय के अंतिम उपाय के रूप में पुलिस का इस अधिकार में प्रवेश हो गया है। यदि मुख्य सचिव असुरक्षित महसूस करें और पुलिस में शिकायत दर्ज करें और फिर विधायक व मंत्री विरोधी शिकायतें दर्ज कराएं, जैसा कि हो रहा है तो सारे लोकतंत्रों द्वारा इतने परिश्रम से नागरिक प्रशासन के पक्ष में स्थापित सत्ता का संतुलन बिगड़ जाएगा। जब एलजी (उपराज्यपाल) दिल्ली विधानसभा में आएंगे तो क्या अब हम विधायकों से उनकी रक्षा के लिए पुलिस सुरक्षा मांगेंगे? तब हम क्या उत्तर कोरिया या म्यांमार से अलग हैं?

दैनिक जागरण

Date: 23-02-18

सरकार और रिजर्व बैंक नोटबंदी के बाद बैंकिंग व्यवस्था की खामियां पता न कर सकी

पंजाब नेशनल बैंक में बड़ा घोटाला सामने आने के बाद बड़े पैमाने पर बैंक कर्मचारियों के तबादले के साथ वित्त मंत्रालय और रिजर्व बैंक की ओर से बैंकिंग व्यवस्था की खामियां पता करने की कोशिश एक तरह से चिड़िया चुग गई खेत वाली कहावत को ही चरितार्थ कर रही है। बैंकिंग व्यवस्था के साथ सरकार की साख को बट्टा लगाने वाले कारनामे के बाद दिखाई जा रही सक्रियता से तो यही लगता है कि सभी जिम्मेदार लोग घोटाला होने का इंतजार कर रहे थे। आखिर नीरव मोदी की कारगुजारी का पता लगने के पहले किसी ने इसकी चिंता क्यों नहीं की कि सरकारी बैंक आवश्यक नियम-कानूनों और निगरानी तंत्र का पालन करते हुए पर्याप्त सतर्कता बरत रहे हैं या नहीं? क्या वित्त मंत्रालय और साथ ही रिजर्व बैंक को तभी नहीं चेत जाना चाहिए था जब नोटबंदी के बाद यह साफ हो गया था कि बैंकों ने जमकर मनमानी की है?

रिजर्व बैंक की यह जवाबदेही बनती है कि उसने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित इलेक्ट्रॉनिक वित्तीय प्लेटफार्म स्विफ्ट को कोर बैंकिंग सिस्टम के दायरे में लाना अनिवार्य क्यों नहीं बनाया? इस सवाल का जवाब इसलिए मिलना चाहिए, क्योंकि 2016 में बांग्लादेश में एक बैंक से हुई 8.1 करोड़ डॉलर की धोखाधड़ी में स्विफ्ट संदेश प्रणाली की ही खामी सामने आई थी। समझना कठिन है कि इसके बाद रिजर्व बैंक ने भारतीय बैंकों से केवल सावधान रहने को कहकर कर्तव्य की इतिश्री क्यों कर ली? आखिर उसने यह सुनिश्चित क्यों नहीं किया कि बैंक हर हाल में स्विफ्ट संदेश प्रणाली को कोर बैंकिंग सिस्टम का हिस्सा बनाएं? अगर रिजर्व बैंक ने बैंकों को इसके लिए बाध्य किया होता तो शायद नीरव मोदी का गोरखधंधा पहले ही पकड़ में आ जाता।पंजाब नेशनल बैंक के घोटाले पर वित्त मंत्री की ओर से यह जो संकेत दिया गया कि बैंक प्रबंधन और ऑडिटर्स के खिलाफ भी कार्रवाई हो सकती है उसके संदर्भ में भी यह सवाल उठता है कि आखिर इसके पहले और खासकर तभी बैंकिंग प्रबंधन और बैंकों की ऑडिट व्यवस्था को दुरुस्त करने की कोई ठोस पहल क्यों नहीं हुई जब फंसे कर्ज की समस्या बेलगाम होती दिख रही थी? सरकारी बैंकों की नियामक संस्था रिजर्व बैंक के साथ यह नैतिक जिम्मेदारी तो वित्त मंत्रालय की भी बनती थी कि वह बैंकों के कुप्रबंधन को ठीक करने के लिए अपने स्तर पर उचित कदम उठाता। यदि सरकारी बैंकों के फंसे कर्ज एनपीए में तब्दील होते जा रहे हैं और सक्षम लोग कर्ज लौटाने के बजाय बहाने बनाकर मौज कर रहे हैं तो इसीलिए कि बैंकों का प्रबंधन कुप्रबंधन का पर्याय बन गया है। इसी कुप्रबंधन के कारण सरकारी बैंक आम आदमी के बजाय संदिग्ध किस्म के लोगों के हितों की पूर्ति अधिक कर रहे हैं। उनके गोरखधंधे की वजह से ही उनकी साख रसातल में जा लगी है। रिजर्व बैंक के साथ-साथ सरकार को यह समझ आ जाना चाहिए कि अगर बैंकिंग व्यवस्था सुधरी नहीं तो उस पर से लोगों का भरोसा उठ सकता है और वे देश के साथ-साथ विदेश में भी बदनाम हो सकते हैं। ऐसी कोई स्थिति भारतीय अर्थव्यवस्था को गंभीर संकट की ओर ही ले जाएगी।

नईदुनिया

Date: 23-02-18

मालदीव पर सख्त कूटनीति जरूरी

ब्रह्मा चेलानी(लेखक सामरिक मामलों के विशेषज्ञ और सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च में फेलो हैं)

मालदीव के तानाशाह अब्दुल्ला यामीन ने भारत और अन्य देशों की आपत्ति के बावजूद आपातकाल को एक माह के लिए और बढ़ा दिया। इसके पहले यामीन के इकलौते संरक्षक चीन ने अपने सरकारी मुखपत्र के जरिए भारत को धमकाने के अंदाज में कहा था कि यदि भारत मालदीव में किसी तरह का सैन्य हस्तक्षेप करता है तो बीजिंग 'चुप नहीं रहेगा और इसे रोकने के लिए 'कदम उठाए जाएंगे। यह एक तरह से गीदड़ भभकी ही थी, क्योंकि चीन के पास अभी तक इतनी ताकत नहीं कि वह अपने तट से दूर व्यापक सैन्य अभियान को अंजाम दे सके। चीन की बढ़ती नौसैनिक शक्ति के बावजूद भारत को उसके ही सामुद्रिक क्षेत्र में जवाब देने की कल्पना ही मूर्खतापूर्ण है। भारत चाहता तो चीन की इस धौंस का जवाब दे सकता था, जिसमें वह मालदीव में त्वरित सैन्य कार्रवाई के जरिए यामीन को अपदस्थ कर जेल में धकेलते हुए सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को अंतरिम राष्ट्रपति बनाकर संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में निष्पक्ष एवं पारदर्शी चुनाव की प्रक्रिया को संपादित कराता। हकीकत में भारतीय सैन्य हस्तक्षेप की कोई संभावना ही नहीं, क्योंकि इससे वह एक बड़ी हद तक उन सिद्धांतों का मखौल उड़ाता, जो लंबे अरसे से भारत की थाती रहे हैं कि वह अन्य देशों की संप्रभुता का पूरा सम्मान करता है और उनके आंतरिक मामलों में दखल नहीं देता। तमाम पहलुओं को ध्यान में रखकर खासी एहतियात बरतते हुए भारत ने मालदीव में फिलहाल हस्तक्षेप नहीं किया, जहां बढ़ते चरमपंथ के चलते राजनीति दिनोंदिन जहरीली होती जा रही है। यदि वहां हालात बिगड़कर गृहयुद्ध सरीखे हो जाते और राजधानी माले की सड़कों पर उन्माद शुरू हो जाता, तब भारत 'सुरक्षा के दायित्वबोध के तहत जरूर हस्तक्षेप कर सकता था। ठीक वैसे ही जैसे नैतिक सिद्धांत के आधार पर नाटो ने लीबिया में हस्तक्षेप कर मुअम्मर गद्दाफी का तख्तापलट किया था। भारत ने इसके पहले 1988 में मालदीव में सैन्य हस्तक्षेप कर तख्तापलट के मंसूबों को ध्वस्त कर दिया था।

बीजिंग की धमकी केवल डोकलाम की तरह मनोवैज्ञानिक लड़ाई वाली ही नहीं थी, बल्कि इस अर्थ में और भी महत्वपूर्ण थी कि उसने अंतरराष्ट्रीय रूप से अलग-थलग पड़ते जा रहे यामीन का साथ दिया। भारत द्वारा संभावित कार्रवाई की सूरत में मालदीव को सुरक्षा का भरोसा जताकर चीन मालदीव में अपनी पैठ और गहरी करना चाहता है। वहां उसने पहले ही तमाम परियोजनाएं हथिया रखी हैं। मालदीव में लोकतांत्रिक रूप से चुने गए इकलौते (पूर्व) राष्ट्रपति मोहम्मद नशीद का दावा है कि अपनी 'जमीन हड़पने की नीति के तहत चीन मालदीव के 17 टापुओं पर काबिज हो चुका है। यामीन की निरंकुश तानाशाही की ओर लगातार बढ़ती प्रवृत्ति को देखते हुए भारत ने जल्दबाजी में कोई कदम न उठाकर अक्लमंदी का ही परिचय दिया। असल में भारतीय विदेश नीति के समक्ष मालदीव संकट से परे भी चुनौतियां मौजूद हैं। अपने रणनीतिक-सामरिक दायरे में भारत के लगातार घटते प्रभाव का देश की सुरक्षा के लिहाज से दीर्घकालिक असर पड़ेगा। आज चीन का प्रभुत्व नेपाल, श्रीलंका और मालदीव जैसे उन देशों में भी बढ़ता जा रहा है, जो अमूमन भारत के अधिक करीब माने जाते रहे हैं। बीजिंग की मंशा मालदीव में भी जिबूती जैसा नौसैनिक अड्डा स्थापित करने की है। इससे चीन भारत के सामने वैसा ही सामुद्रिक खतरा पैदा करेगा, जैसा माओ के दौर में हिमालय के मोर्चे पर खड़ा किया था।

मालदीव के मामले में हकीकत से भारत का सामना हाल-फिलहाल वहां आपातकाल की घोषणा के साथ नहीं, बल्कि फरवरी 2012 में हुआ था। तब अपनी सत्ता बचाने के लिए छटपटा रहे नशीद ने बड़ी व्यग्रता के साथ तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से मालदीव में हस्तक्षेप करने की गुहार लगाई थी, जहां इस्लामी चरमपंथी उन्हें सत्ता से बेदखल करने पर आमादा थे। हालांकि नशीद चीन की ओर अपने झुकाव से नई दिल्ली को तब कुपित कर चुके थे, जब माले में दक्षेस सम्मेलन के दौरान सिंह के आगमन से एक दिन पहले ही वह चीन के नए दूतावास का खुद उद्घाटन करने चले गए थे।

भारत को नशीद के तख्तापलट को न रोकने के कुछ नतीजे भी भुगतने पड़े। वहां इस्लामिक चरमपंथी मजबूत हुए और चीन के लिए अधिक गुंजाइश बनी। नशीद की विदाई के कुछ महीनों बाद ही मालदीव ने अपने मुख्य अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे का काम भारतीय कंपनी जीएमआर इन्फ्रास्ट्रक्चर से छीन लिया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के दौर में मालदीव लगातार भारत के हितों के खिलाफ काम करता रहा। छह माह पूर्व ही मालदीव ने नई दिल्ली को तब सख्त संदेश दिया, जब उसने अपनी सामुद्रिक सीमा में तीन चीनी युद्धपोतों का स्वागत किया। इन युद्धपोतों ने माले और गिरीफुशी द्वीप पर लंगर डालकर मालदीव सुरक्षा बलों को विशेष प्रशिक्षण दिया। यामीन ने 2015 में संविधान में संशोधन कर जमीन पर विदेशी स्वामित्व को कानूनी जामा पहनाया। इस कदम को चीन की मदद के लिहाज से ही देखा गया। इसके तहत महासागरीय क्षेत्र की 70 प्रतिशत वांछित भूमि के लिए न्यूनतम एक अरब डॉलर के निवेश की परियोजना का पैमाना तय कर दिया गया। यह नई दिल्ली के ढुलमुल रवैये का ही नतीजा रहा कि यामीन ने हाल में चीन के साथ मुक्त व्यापार समझौते पर मुहर लगाई। भारत को अब सख्ती से काम लेना चाहिए। अन्य लोकतांत्रिक शक्तियों के साथ मिलकर मालदीव पर प्रतिबंध लगाकर दबाव बनाना चाहिए। वहां भारतीय हस्तक्षेप खतरनाक हो सकता है, क्योंकि किसी भी अधिकृत संस्था ने भारत को सेनाएं भेजने के लिए आमंत्रित नहीं किया। वैसे तो भारतीय सैन्य बल कुछ घंटों के भीतर ही माले को अपने नियंत्रण में ले सकते हैं, लेकिन एक बड़े हद तक ध्रुवीकृत देश में आखिर इसकी क्या परिणति होगी? इस्लामी चरमपंथियों के उभार और सत्तासीन लोगों के कड़े रुख को देखते हुए लोकतांत्रिक आजादी को बचाने के लिए वहां विश्वसनीय साथी तलाशना कड़ी चुनौती होगी। अगर यामीन के सत्ता से बेदखल होने के बाद चुनाव की स्थिति आती है, तो भी वहां चीन का दबदबा कम होने के आसार नहीं हैं।

बांग्लादेश, म्यांमार, नेपाल और श्रीलंका में भी बीजिंग ने भारतीय कूटनीति को मात दी है और कई बार तो लोकतांत्रिक रूप से चुनी गई सरकारों के साथ सौदेबाजी में भी उसका प्रदर्शन बेहतर रहा है। मालदीव को उसके बढ़ते कर्ज का डर दिखाकर भी चीन उसे अपने पाले में लाने की कोशिश करेगा। मालदीव में सैन्य हस्तक्षेप जरूरी भी है तो इसके लिए भारत नहीं, बल्कि अमेरिका या ब्रिटेन को वहां फौज भेजनी चाहिए। एक तो भारत की तरह उनके लिए वहां गंवाने के लिए बहुत कुछ नहीं है और दूसरे, लोकतंत्र की रक्षा उनकी विदेश नीति का हमेशा से एक अहम पहलू रहा है। हिंद महासागरीय क्षेत्र में चीन का बढ़ता प्रभुत्व केवल भारत ही नहीं, बल्कि ब्रिटिश-अमेरिकी नौसैनिक वर्चस्व के लिए भी बड़ा खतरा है। हिंद महासागर में अमेरिका आज भी सबसे बड़ी नौसैन्य शक्ति है। हिंद महासागर के बीचोंबीच स्थित ब्रिटिश नियंत्रण वाले द्वीप दिएगो गार्शिया में अमेरिका का बेहद अहम सैन्य अड्डा है। अमेरिका द्वारा इराक, अफगानिस्तान से लेकर हाल में सीरिया पर बमबारी करने में इसकी अहम भूमिका रही है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 22-02-18

चीन की चाल और वैकल्पिक रास्ता

विवेक काटजू

कल यानी शुक्रवार को ऑस्ट्रेलिया के **प्रधानमंत्री** मैल्कम टर्नबुल अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप से मिलने वाले हैं। **व्हाइट** हाउस में होने वाली इस बातचीत में तमाम अहम मसलों के साथ जिस एक मुद्दे पर खासतौर से बात होगी, वह है चीन की विस्तारवादी नीति। यह **सही** बात है कि ऑस्ट्रेलिया और चीन का करीबी आर्थिक रिश्ता है, पर एशिया के **अन्य** देशों की तरह बीजिंग के रवैये से वह भी खासा परेशान है। असल में, चीन की अर्थव्यवस्था ने पिछले तीन दशकों में तेज तरक्की की है, और यह मुल्क 'दुनिया की फैक्टरी' बन गया है। मगर अब वह अन्य क्षेत्रीय देशों पर दबाव डाल रहा है और उनकी नीतियों को अपने हित में मोड़ना चाहता है। 'वन बेल्ट वन रोड' (ओबोर), जिसे अब नया नाम 'बेल्ट रोड इनिशिएटिव' (बीआरआई) दिया गया है, चीन की इसी महत्वाकांक्षी पटकथा का एक अहम किरदार है, जिसे लेकर ऑस्ट्रेलिया की अपनी चिंता है। नतीजतन, वह अमेरिका, जापान और भारत के साथ मिलकर एक ऐसी ढांचागत योजना बनाने की सोच रहा है, जो 'बीआरआई' की काट मानी जा रही है।

कहने को तो 'बीआरआई' का उद्देश्य **कनेक्टिविटी** और इन्फ्रास्ट्रक्चर यानी संपर्क व बुनियादी ढांचा बढ़ाना है, पर असलियत में चीन इसके जरिए अपने कूटनीतिक व राजनीतिक दबदबे का विस्तार करना चाहता है। इस परियोजना के तहत उसने मध्य एशिया, पश्चिम एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया, पूर्व **एशिया**, प्रशांत महासागर व हिंद महासागर के देशों को जोड़ने **की** बात कही है। मगर उसकी मंशा इन तमाम मुल्कों की धुरी बनकर अपने **हित** में सभी की अर्थव्यवस्थाओं को खुद से जोड़ने की है। 'बीआरआई' के तहत इन देशों में तमाम तरह की सड़कें, बंदरगाह, अन्य ढांचागत काम, बांध आदि बनाए जाएंगे, जिसके लिए चीन विशेष रूप से धनराशि देगा अथवा उन अंतरराष्ट्रीय बैंकों से पैसे मुहैया कराएगा, जिनमें उसकी अहम भागीदारी है। मगर पूर्व के अनुभव चीन की चुगली करने को पर्याप्त हैं। दरअसल, ज्यादातर मौकों पर यह देखा गया है कि कर्ज न चुका पाने की स्थिति में चीन ने कर्जदार देश में हस्तक्षेप की कोशिश की। जैसे, अफ्रीका और दक्षिण **अमेरिका** के कई देश इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट का कर्ज नहीं लौटा पाए, तो चीन ने वहां अपना अधिकार जमाने का प्रयास किया। इतना ही **नहीं**, चीन ऐसे निर्माण कार्यों में सामग्रियों की आपूर्ति भी खुद करता है और कामगार की भी। कई बार तो ये कामगार उन देशों में ही बस गए, जहां वे भेजे गए थे। इसके कारण संबंधित **देशों** में कई तरह की स्थानीय समस्याएं भी पैदा हुईं।'बीआरआई' में भी ऐसा कुछ होने की आशंका है। हालांकि अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया व जापान जैसी ताकतों के चीन के खिलाफ साथ आने की कई दूसरी वजहें भी **हैं**। दरअसल, चीन के मुखिया शी जिनपिंग बराबर यह संदेश देने की कोशिश कर रहे हैं कि 'बीआरआई' जैसी महत्वाकांक्षी परियोजना पूरी होने के बाद भी चीन का व्यवहार अन्य **महाशक्तियों** की तरह नहीं होगा और वह सहयोगात्मक रवैया बनाए रखेगा। मगर उप-**महाद्वीप** के देशों का अनुभव इसके विपरीत रहा है। मसलन, दक्षिण चीन सागर में चीन न सिर्फ अंतरराष्ट्रीय कानूनों का उल्लंघन करता रहा है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय न्यायिक प्राधिकरण के फैसले को भी वह नहीं मान रहा। वह अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को भी लगातार चुनौती दे रहा है।

इससे आशंकाएं बढ़ रही हैं, खासकर एशियाई देशों में। जापान की सरकार तो पिछले कुछ वर्षों से बीजिंग के रवैये से खफा है ही, भारत की भी अपनी चिंताएं हैं। बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका व मालदीव जैसे देशों में भी आर्थिक परियोजनाओं के बहाने चीन का दखल बढ़ा है। साफ है कि चीन की विस्तारवादी नीतियां बड़ी चुनौती बनकर उभरी हैं। इससे वे देश तो हलकान हैं ही, जहां चीन का हस्तक्षेप बढ़ रहा है, वे मुल्क भी कम परेशान नहीं है, जिनसे चीन का छत्तीस का आंकड़ा है। अमेरिका स्वाभाविक तौर पर इस सब पर नजर बनाए हुए है। वाशिंगटन तो यह स्पष्ट कर चुका है कि सहयोग के साथ-साथ वह उन चुनौतियों का भी मुकाबला करने को तैयार है, जो चीन के रवैये से पैदा हो रही हैं।ये चारों देश बखूबी समझ रहे हैं कि चीन 'बीआरआई' से क्या हासिल करना चाहता है? हर महाशक्ति चाहती है कि उसके साथ कई देश जुड़े रहें। शीत युद्ध के दौरान अमेरिका ने यूरोप व अन्य देशों को 'नाटो पैक्ट' के तहत संगठित किया था। सोवियत रूस भी 'वारसा पैक्ट' के तहत पूर्वी व मध्य यूरोप के देशों को खुद से जोड़ने का प्रयास कर चुका है। चूंकि चीन अब एक महाशक्ति के रूप में अमेरिका से दो-दो हाथ करना चाहता है, इसलिए उसने 'बीआरआई' की कल्पना की है। इसके जरिए वह तमाम देशों का एक गुट बनाना चाहता है, जो उस पर पूरी तरह निर्भर हो जाएं।

नई दिल्ली के लिए भी 'बीआरआई' किसी बड़ी चुनौती से कम नहीं। इसीलिए पिछले वर्ष जब चीन ने इसे लेकर एक सम्मेलन बुलाया था, तो भारत ने उसमें शिरकत नहीं की थी। भारत की नाराजगी 'चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे' को लेकर है, जो इस परियोजना में खास भूमिका अदा कर रहा है। यह पश्चिम चीन को पाकिस्तान से जोड़ता है और पाक अधिकृत कश्मीर (पीओके) से होकर पाकिस्तान में प्रवेश करता है। भारत ने इसी पर ऐतराज जताया है, क्योंकि नई दिल्ली इसे अपनी संप्रभुता का उल्लंघन मानती है। यह सही भी है। भारत की नजर इस गलियारे से चीन और पाकिस्तान के बदलते संबंध पर भी है। अब तक बीजिंग और इस्लामाबाद के रिश्ते 'भारत के प्रति उनके नकारात्मक रवैये' पर टिके थे, लेकिन अब इसमें इस गलियारे से एक सकारात्मक बदलाव आया है। एक मसला ग्वादर बंदरगाह का भी है, जिसके चीन के हवाले हो जाने से हमारी सुरक्षा से जुड़ी चुनौतियां उभरी हैं।चीन की अपनी आशंकाएं भी कम नहीं। आर्थिक गलियारा बलूचिस्तान होकर गुजरेगा और बलूचों की पाकिस्तानी हुकूमत से कभी बनी नहीं, इसलिए बीजिंग को डर है कि भारत कहीं इसमें दखलंदाजी न करे। हालांकि हम बराबर साफ कर चुके हैं कि द्विपक्षीय रिश्तों में दखल देना हमारी फितरत नहीं रही है, फिर चाहे वह चीन और पाकिस्तान का संबंध ही क्यों न हो, मगर अपने हितों की रक्षा के लिए हम पूरी तरह तत्पर रहेंगे। ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका और जापान के साथ मिलकर भारत का 'बीआरआई' के विकल्प पर आगे बढ़ना चीन को यह संदेश पहुंचाने का एक सार्थक प्रयास है।

जनसत्ता

Date: 22-02-18

फिर तकरार

संपादकीय

दिल्ली सरकार और उसके प्रशासनिक अधिकारियों के बीच एक बार फिर सीधी तकरार शुरू हो गई है। मुख्य सचिव अंशु प्रकाश ने आरोप लगाया है कि मुख्यमंत्री और उपमुख्यमंत्री की उपस्थिति में आम आदमी पार्टी के कुछ विधायकों ने उन्हें गालियां दीं और उनके साथ हाथापाई की। अंशु प्रकाश ने थाने में लंबी शिकायत दर्ज की है। पर दिल्ली सरकार का कहना है कि मुख्य सचिव के सारे आरोप बेबुनियाद हैं। उनके साथ कोई बदसलूकी नहीं हुई। उलटा आम आदमी पार्टी के एक विधायक ने मुख्य सचिव के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई है कि उन्होंने उनके खिलाफ जातिगत टिप्पणी की, जब उन्होंने अपने विधानसभा क्षेत्र में लोगों को राशन मिलने में आ रही

परेशानी की शिकायत की।मुख्य सचिव पर हुए तथाकथित हमले के बाद दिल्ली सचिवालय से जुड़े **प्रशासनिक** अधिकारियों और कर्मचारियों ने काम का बहिष्कार कर दिया और मांग की कि जब तक आरोपियों के खिलाफ कड़ी **कार्रवाई** नहीं होती, वे काम पर नहीं लौटेंगे। प्रशासनिक अधिकारी पहले **उपराज्यपाल** और फिर केंद्रीय गृहमंत्री के पास भी अपनी शिकायत **दर्ज** करा आए। जबकि दिल्ली सरकार में मंत्री इमरान हुसैन ने पुलिस के **समक्ष** शिकायत दर्ज कराई है कि सचिवालय के कुछ **अधिकारियों** और कर्मचारियों ने उन्हें लिफ्ट में बंधक बना लिया था और वे किसी तरह वहां से जान बचा कर निकलने में कामयाब हुए।

इस प्रकरण से स्वाभाविक ही एक बार फिर आम आदमी पार्टी सरकार विवादों में घिर गई है। ताजा **प्रकरण** के बाद जिस तरह का माहौल बन गया है, उसमें दिल्ली सरकार के **लिए** काम करना कठिन हो गया है। इसका असर **स्वाभाविक** रूप से योजनाओं के क्रियान्वयन पर भी पड़ेगा। आम आदमी पार्टी और प्रशासन के बीच शुरू से ही तनातनी का रिश्ता रहा है। पहले मुख्यमंत्री सार्वजनिक मंचों से भी आरोप लगाते रहे कि दिल्ली सरकार के साथ नत्थी प्रशासनिक अधिकारी केंद्र की भाजपा सरकार के इशारे पर काम कर रहे हैं, इसलिए उन्हें काम करने में दिक्कतें आ **रही** हैं। मुख्य सचिव और दूसरे सचिवों की नियुक्ति को लेकर पूर्व उपराज्यपाल और दिल्ली सरकार के बीच लंबे समय तक **रस्साकशी** चलती रही। जब इस मामले में कुछ विवाद थमा नजर आने लगा था, तभी यह प्रकरण घटित हो गया। दरअसल, दिल्ली सरकार अपने तीन साल पूरे होने के मौके पर टेलीविजन पर **विज्ञापन** प्रसारित करना चाहती है, जिसके लिए मुख्य सचिव की मंजूरी **आवश्यक** है। पर नियम-कायदों का हवाला देते हुए मुख्य **सचिव** उसके प्रसारण में अड़ंगा लगाते रहे हैं। इसी को लेकर दिल्ली सरकार, आम आदमी पार्टी विधायकों और मुख्य सचिव के बीच **तल्खी** बताई जा रही है।दिल्ली सरकार पर विज्ञापनों के प्रसारण में अतार्किक **रूप** से पैसा खर्च करने का आरोप पहले ही लग चुका है। ऐसे में मुख्य सचिव की फूंक-फूंक कर कदम रखने की मंशा समझी जा सकती है। पर यह ऐसा मामला नहीं हो सकता, जिस पर विवेक से काम लेने के बजाय हिंसक रास्ता अख्तियार करने की नौबत आ जाए। आम आदमी पार्टी लोगों की समस्याओं को दूर करने, **पारदर्शी** और प्रभावी प्रशासन देने के वादे पर सत्ता में आई थी, इसलिए उससे संयम **की** अपेक्षा अधिक की जाती है। फिर अगर इस प्रकरण **में** कोई राजनीतिक कोण है, तो उसे भी उचित नहीं कहा जा सकता। सरकार और प्रशासन के बीच इस तरह की अप्रिय स्थिति किसी भी रूप में लोकतांत्रिक दृष्टि से ठीक नहीं है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 22-02-18

आप और विवाद

संपादकीय

दिल्ली की आम आदमी पार्टी की सरकार और उसके विधायक फिर विवादों के घेरे में हैं। उन पर अपनी सरकार के मुख्य सचिव अंशु प्रकाश को धमकी देने और उनके साथ मारपीट के आरोप हैं। हालांकि इसे भी अन्य मामलों की भांति **दिल्ली** और केंद्र सरकारों के बीच राजनीतिक वर्चस्व की लड़ाई के रूप में देखा जा रहा है। बहुधा लोग इसी नजरिये से आप और भाजपा के बीच तनाव को देखते रहे हैं। इनका मानना है कि ये सब और कुछ नहीं, **दिल्ली** की सत्ता में भाजपा के आने की बेसब्री है। इसका **प्रतिफलन** तरह-तरह के टकरावों में होता रहता है। हो सकता है, कुछ मामलों में ऐसा हो भी। यह अस्वाभाविक भी नहीं है।

विपक्षी पार्टी होने का एक अर्थ अपने लिए सत्ता में आने का अवसर जुटाना भी है। लेकिन इसका हरेक मामले में तोहमत के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। मौजूदा प्रकरण में बहुत झोल हैं। यह मीटिंग बुलाने के तरीके और उसकी टाइमिंग से ही जाहिर होता है। मुख्य सचिव को मीटिंग में आने के तकादों और आधी रात के समय से स्पष्ट हो जाता है कि आप के विधायक और सरकार कोई खास संकेत देने की तैयारी किये बैठे थे। यह तय अपनी जगह है कि परिस्थितियों की गंभीरता के मुताबिक कैबिनेट मीटिंग कभी भी बुलाई जा सकती है। पर आप की बैठक उस स्तरीय की भी नहीं थी और न राशन कार्ड की गड़बड़ियों का हल करने की वैसी आपात स्थिति थी। यह काम दिन में हो सकता था। लेकिन मुख्य सचिव की प्राथमिकी कहती है कि मसला राशन कार्ड का नहीं, तीन साल की उपलब्धियों का ढोल पीटने के लिए पैसे जारी न करने का था। इस बारे में सुप्रीम कोर्ट की नियमावली का उनके हवाला देने पर आप विधायक संतुलन खो बैठे और मुख्य सचिव के साथ ‘‘मुक्केबाजी’ की गई। वैसे यह बात ‘‘प्रयोगधर्मी’ सरकार की अतिशय विज्ञापनप्रियता मेंझलकती रही है, जो प्रतिबंधों के बीच भी मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल की आवाजों के उपयोग का उपाय निकालती रही है। दूसरे आप पर इस प्रकरण में अविास के लिए खुद उसका रिकार्ड जवाबदेह है। मनचाहे काम करवाने के लिए वह अपने संख्याबल के असंवैधानिक इस्तेमाल पर ज्यादा भरोसा करती है। उसको सोचना चाहिए कि नौकरशाह उसे उचित सलाह देने के लिए हैं। उनके साथ बेहतर बर्ताव उसकी लोकतांत्रिक कार्यशैली का निदर्शन होना चाहिए,जो नहीं हुआ है ।

Date: 22-02-18

समाज का भरोसा मिले

रविरंजन

शिक्षकों के लिए सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के बाद एवं ड्राफ्ट रेगुलेशन के जारी होने के बाद, पिछले कुछ दिनों से देशभर के शिक्षक संगठन लगातार सरकार की उच्च शिक्षा नीति को लेकर आंदोलनरत हैं, जिसमें सर्विस कंडीशन, वेतन-भत्ते, स्थाई नियुक्ति के साथ-साथ शत-प्रतिशत सरकारी अनुदान जैसे कई मांगों को लेकर शिक्षक संसद मार्ग पहुंच रहे हैं.शिक्षकों का सड़क पर उतरना केवल वेतन भत्ते और आर्थिक लाभ से जोड़कर नहीं देखा जा सकता, बल्कि आज आवश्यकता है इसके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पक्षों को समझने के साथ-साथ समाज के बदलाव में शिक्षक आंदोलन की भूमिका को समझना. तभी हम एक समग्र एवं समावेशी शिक्षा नीति को सुदृढ़ कर सकते हैं. शिक्षकों की यह लड़ाई सिर्फ वेतन और सुविधाओं को बढ़ाने या अधिक लाभ पाने की नहीं है. विश्वविद्यालय, उसका शासन और उद्देश्य किसी भी सरकारी मंत्रालय, करखाना या जिला न्यायालय से बिल्कुल भिन्न है. विश्वविद्यालय के पास एक कठिन एवं दोहरी भूमिका है. पहला, सरकारी और गैर सरकारी संगठनों के लिए उपयुक्त और कुशल मानव संसाधन मुहैया कराना और दूसरा, अपनी शिक्षा से सामाजिक और मानवीय मूल्यों का निर्माण करना जो समाज को एकता एवं भाईचारा के सूत्र में बांधकर रखते हैं. जहां बाकी संगठनों का दायित्व काफी यांत्रिक एवं प्राकृतिक से उपकरणीय (इंस्ट्रूमेंटल) है, वहीं शैक्षिक संस्थानों की भूमिका इंस्ट्रूमेंटल होने के साथ-साथ मानकीय (नोर्मेटिव) भी है. शायद सरकार और समाज द्वारा विश्वविद्यालय के इन्हीं प्रमुख दायित्वों के निर्वहन के खातिर, इन संस्थाओं को स्वायत्तता प्रदान की गई होगी और बिना सरकारी हस्तक्षेप पर चलाने की बात रही होगी.

शिक्षाविदों का मानना है कि विश्वविद्यालयों का समाज में हमेशा से एक सामरिक स्थान (स्ट्रैटिजक पोजीशन) रहा है जो समय और सरकारों के बदलाव के कारण मिसप्लेस हो गया है. शिक्षक संगठनों के नेतृत्व में शिक्षकों का आंदोलन आज सवाल उठाता है कि कैसे विश्वविद्यालयों के सामरिक स्थान को पुन: **स्थापित** किया जाए? सरकार का मानना है कि बाकी **सरकारी** कर्मचारियों की भांति शिक्षकों को भी बढ़ा हुआ वेतन दिया जा चुका है इसलिए असंतोष बेवजह है; भले संस्थाएं वर्षो से **तदर्थ** शिक्षकों के सहारे ही क्यों न चलें, बरसों से नियुक्ति का मसला रु का ही रहे, देश के शिक्षकों की पदोन्नति थमी रहे, और तीस **प्रतिशत** संसाधन सरकारी शिक्षा संस्थाओं को खुद जुटाने का फरमान ही क्यों न दिया जाए? परिणामस्वरूप इस तरह के सरकारी फरमान शिक्षकों को निरुत्साहित ही कर रहे हैं. साथ में शिक्षक, शिक्षा और शिक्षण संस्थान के प्रति समाज में भी निराशा भी उत्पन्न कर रहे हैं. सरकारी अनुदान प्राप्त उच्च शिक्षा के विनाशकारी बदलाव की इस घड़ी में शिक्षकों पर एक बड़ा दायित्व है, जो कक्षाओं के बाहर समाज में नागरिकों के बीच जाकर बेहतर समाज के लिए समावेशी शिक्षा **व्यवस्था** की पुरजोर वकालत करने की जरूरत पर बल दे रहे हैं. शायद इसीलिए आज शिक्षक संगठन अपने शिक्षकों के साथ सड़कों पर है. सरकारी अनुदान प्राप्त शिक्षा व्यवस्था के **शासकीय** पक्ष की दो मूलभूत खामियां हैं.

पहला, पहले से ही सीमित स्वायत्ता पर चलने **वाली** सरकारी शिक्षण संस्थानों की स्वायत्तता और **सिकुड़ती** जा रही है, चाहे पाठ्यक्रम बनाने की बात हो या शोध विषय को चुनने के मापदंड. यूजीसी द्वारा पारित श्रेणीकृत स्वायत्तता का एक हालिया फरमान शिक्षा संस्थाओं में स्वायत्तता के नाम पर श्रेणीबद्ध **तरीके** से एक असमानता भी लाएगा, जो प्रतियोगिता और मेरिट के नाम पर शिक्षा में गुणवत्ता में सुधार कम और निजीकरण को **ज्यादा** बढ़ावा देगा. दूसरा, सामाजिक साझेदारों के बीच **शिक्षा** व्यवस्था और शिक्षकों के प्रति घटता भरोसा. नतीजा समाज और सरकार का निरंतर काम होता सहयोग.शिक्षा व्यवस्था का **नौकरशाहीकरण** इस कदर हो रहा है कि आज राज्य का कनीय नौकरशाह भी **कुलपतियों** को उनके खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की **धमकी** देते नहीं घबराता. वहीं कुछ कुलपति भी अपने किलेबंद दफ्तर से **विश्वविद्यालय** चलाते हैं और छात्रों को सुनने और समझने का साहस नहीं. अगर शिक्षकों में भरोसा को नजरअंदाज करते हुए, समाज में **शिक्षा** व्यवस्था के साझेदार सजग नहीं हुए तो केंद्रीय **विश्वविद्यालयों** का भी वही हश्र होगा, जिसने राज्य विश्वविद्यालों में **शैक्षणिक** प्रक्रिया को चौपट किया. वक्त आ गया है, शिक्षा **की** सामाजिक संसाधन और सामूहिक संपत्ति मानते हुए हम सब जनविरोधी और निजीकृत उच्च शिक्षा नीति का विरोध करें.

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 22-02-18

Betraying a promise

Both Delhi's elected government and its bureaucracy must consider consequences of vitriol they have together unleashed.

Editorial

The Aam Aadmi Party's big victory in 2015 in Delhi had held out a promise — that democracy in India can still allow new players to step in, enlarge the space. The exchange of accusations between Delhi's elected government and its chief secretary mirrors a reneging on those possibilities. Clashing accounts of what transpired at the midnight meeting in the Delhi Chief Minister's residence on Monday paint either Chief Secretary Anshu Prakash or AAP MLAs as the villain.

No matter which version is true, however, the stature of both the AAP and the bureaucracy in Delhi stands severely diminished.The capital's unique position under Article 239AA — it has an elected government but without many of the powers other state governments enjoy — makes its government far more dependent on the Centre's cooperation. This special position demands, therefore, that Delhi's government shows both the willingness and the skill to negotiate, especially with a seemingly unfriendly Centre.On Monday night, however, the AAP appears to have flagged off a sorry sequence of events with a Tughlaki firmaan — it summoned Prakash at midnight to Chief Minister Arvind Kejriwal's residence. The AAP claims its MLAs wanted to discuss "non-disbursal of rations" — yet Food and Civil Supplies Minister Imran Hussain was not present.

In Prakash's version, the meeting was held to discuss the government's publicity programme on its achievements in three years. Subsequently, while the chief secretary alleges he was insulted and assaulted, the AAP contends he used casteist slurs against its MLAs. The next day, even as staff members of the Delhi Secretariat allegedly heckled and assaulted Hussain, the bureaucracy said it will work only on written orders, and the IAS Association took out a candle-light protest march at Rajghat.If the AAP can be accused of an undimmed confrontationism that does not behove a party that has completed three years of its term, the bureaucracy's response renews allegations of political partisanship — the Centre has long been charged with using bureaucrats and the office of the LG to shrink the elected government's room for manoevre. Certainly, the marching IAS Association does its own cause immense disservice.In the last three years, the AAP government has had numerous stand-offs with the bureaucracy and the Centre, over the appointment of officials, over state government decisions being overruled and on the alleged misuse of investigative agencies. Recently, the party faced a political crisis after 20 of its MLAs were disqualified for holding "offices of profit". Since the departure of former Lieutenant-Governor Najeeb Jung, however, a relative calm had set in.

Now, the accusations of assault and abuse announce the end of the welcome lull. Instead of concentrating on governance in general and health and education in particular, two areas in which it has had some success, the bureaucracy and government of Delhi is engaged in a destructive conflict. Both must pause and consider the consequences of the vitriol that has been unleashed, a betrayal of their responsibility to the people of Delhi.

Date: 22-02-18

Fuel for reform

End of Coal India's monopoly is welcome, promises to improve quality of coal, increase efficiency of power generation.

Editorial

The government's decision to open up the coal mining sector to private companies is a long-overdue reform. It will end the 41-year-old near monopoly of Coal India Limited over commercial mining. Though the state-run miner's production has increased by more than 100 million tonnes in the past five years, it has consistently missed government targets. CIL's provisional figures for the April-December 2017 period show that it fell short of the government's production target of 406.5 million tonnes by six per cent.

The premier miner's lacklustre performance is one reason for the country having to import coal despite being the world's third-largest producer of the fossil fuel.In November last year, the Indian Captive Power Producers Association wrote a worried letter to CIL about coal shortage in its plants. These companies, which produce electricity for their own use, "are being pushed towards costlier imports because they are getting barely half the supplies contracted from CIL," it said.In the same month, the Aluminium Association of India wrote to the Prime Minister's Office: "An investment of Rs 1.2 lakh crore in the aluminium sector is holding a debt of Rs 70,000 crore and the employment of 7.5 lakh people is at a very critical risk because of the coal shortage." And in December last year, the Competition Commission of India penalised CIL "for imposing unfair/discriminatory conditions in fuel supply agreements with power producers for supply of non-coking coal".

CIL's monopoly has also reflected on the quality of coal produced in the country. Indian coal has an average ash content of about 45 per cent — far higher than the 25-30 per cent that ensures efficient power generation. The efficiency of the country's thermal power plants has also been compromised because they have to contend with stones and boulders in the coal they procure from CIL. While geological factors are the main reason for the poor quality of Indian coal, the country's premier miner should also take a large measure of the blame.Introduction of competition in mining could take care of some of these concerns. Given, however, that a significant proportion of India's coal resources lies under lands that require forest and environment clearances, the government should ensure that private coal miners are transparent about adhering to these regulations.

Date: 22-02-18

Letting Delhi down

Chaos and bedlam at the top is shaking the load-bearing pillars — political executive and bureaucracy

Written by Shailaja Chandra (The writer is former chief secretary, Delhi.)

The midnight drama at the Delhi chief minister's house, wherein the chief secretary (CS) was reportedly roughed up by two MLAs in the CM's presence is a first in the annals of the civil service. One has heard of humiliation of officers, but seldom involving the chief secretary. The CS is not an ordinary bureaucrat. He is the head of the civil administration in the state or union territory, an officer who represents not just his own service but all services within the civil administration. The buck stops with him no matter which department is involved. His word in sorting out contending arguments and dissension among officers is final.Much more than, say, a secretary to the Government of India, the CS has to show leadership while overseeing that public interest is preserved in letter and spirit. It is his duty to run an efficient administration and give the CM fair and impartial advice. It is not for nothing that the CS has a commanding presence in the administration.

Because there can be no democracy and participatory governance without the rule of law, the authority to administer has to be integral to governance. Which is why the symbols of authority are given to every CS, in states and UTs. In Delhi, the CS has an even more challenging role — he has to report simultaneously to the CM and the lieutenant governor (LG) and walk a tightrope between the vision and concerns of both, even when they are not always on the same page.

To do this every day is not easy, but because of the immense authority vested in the CS to organise and get things done, it is not impossible either. But it will work only as long as both the CM and the LG understand and respect the role of the CS. If that is whittled down, the tremors will be felt across the services. An insult to the CS is seen as an insult to the official brotherhood.

Delhi is different in many ways. In the states, the CS is invariably the choice of the CM and there is understanding and mutual trust between them. If the CS is unbending or difficult, it is easy to make a change quietly and elegantly. In the UT cadre or the AGMUT cadre as it is officially known, that is not so. By and large, the Ministry of Home Affairs (MHA), the authority controlling the cadre serving the NCT of Delhi as well as Goa, Arunachal Pradesh, Mizoram, Daman and Diu, Puducherry, Chandigarh and the Andaman and Nicobar administration, does not stand in the way of the CM having a CS of his choice. Having said that, the officer knows his career is largely to be decided by the MHA and not by the CM of Delhi or elsewhere.Therefore, it is not necessary for the CS to always find a way to meet the demands of the CM, which is a point of difference with other state cadres. CMs recognise this and make the best use of what they have been given.

Even so, anyone who becomes a CS hasn't reached the position to pick fights or cause obstruction. Successful projects bring their own sense of achievement and leading a team of officers and staff, including doctors, engineers, teachers, inspectors and clerks, brings its own zeal to succeed. So no CS would thwart good ideas which are in public interest out of pique or just to score brownie points with the central government. On the contrary, an achievement is as much recognised as the effort of a chief secretary's leadership as of the political executive.Sheila Dikshit and then LG of Delhi, Vijai Kapoor — one a Congress CM and the other an appointee of the NDA government — succeeded in bringing the unit area of house tax, the new Cooperative Societies Act, construction of 42 flyovers and privatisation of the power sector despite standoffs and differences. The system, then and now, is far from ideal. But in whatever way you look at it, Delhi will continue to be the seat of the central government unless the capital of the country is relocated.

Until that happens, the NCT of Delhi will be governed in the truncated manner. But the beauty lies in the fact that if there is a will to function, it is possible for right-minded people to work together. That brings one to the midnight altercation or assault, depending on whose version gets established. If the CS was called at midnight, it should have been a matter of criticality — something which could not wait. One cannot imagine that the release of an advertisement or rations to poor people, howsoever important, could not have waited till the following morning.It is most unusual for a CS to be summoned, and that too repeatedly, without an agenda. Indeed if there was an agenda, the CS should have taken the senior-most officer dealing with the subject with him. That he went alone adds to the impression that this was an agenda-less meeting in the presence of 11 MLAs and perhaps, an effort to overawe the officer, a reprehensible tactic certainly.

Chaos and bedlam at the top will shake the load-bearing pillars — the political executive and bureaucracy — on which the edifice of governance rests. The two pillars need to hold the structure together, or else one would develop cracks and bring the other down with it or lead to a go-slow which would prevent doing things that matter the most. And that includes all the services that one expects a government to deliver efficiently and prudently. It is an administrative breakdown that must be quelled for the sake of the citizens of Delhi.